ब्राह्मणवाद

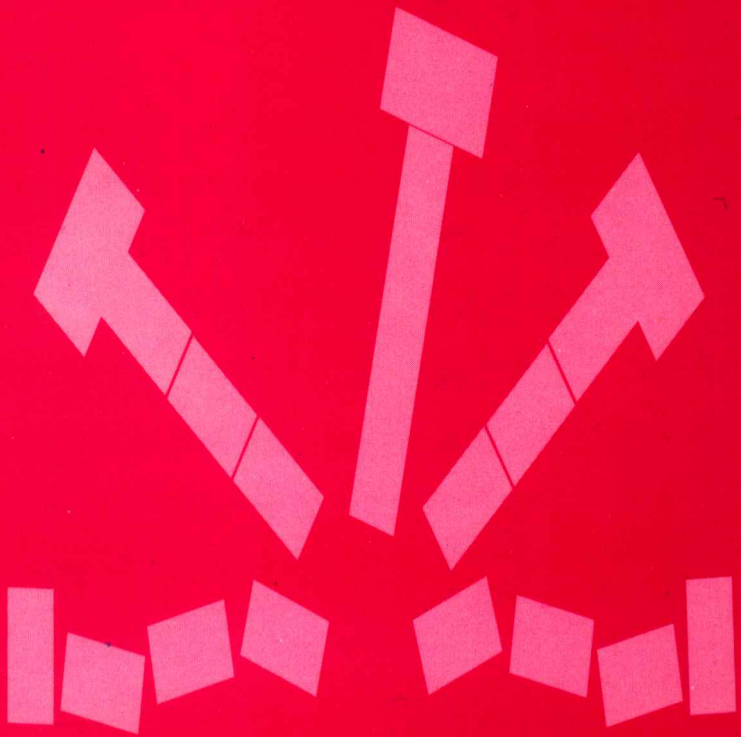

चन्द्रभान प्रसाद

ब्राह्मणवाद

ब्राह्मणवाद

लेखक
चन्द्रभान प्रसाद

सिद्धार्थ बुक्स
हरदेव पुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093

© : प्रकाशक
ISBN : 81-87733-53-5 (PB)
81-87733-54-3 (PB)

प्रकाशक : सिद्धार्थ बुक्स
हरदेवपुरी, सी-263, शाहदरा, दिल्ली-110093

विक्रय केंद्र : गौतम बुक सेन्टर
'चन्दन सदन' सी-263 गली न.-9
हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093
फोन-22570380, 55822074

संस्करण : 2010

मूल्य : 15.00
50.00 (सजिल्द)

मुखपृष्ठ : अनुज कुमार

शब्दांकन : अनुज कम्प्यूटर्स, दिल्ली

मुद्रक : रौशन आफसेट प्रिंटर्स, हरदेवपुरी, दिल्ली

ब्राह्मणवाद क्या है?

नौवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की आधारशिला रख दी गई। यह कार्य आठवीं सदी के आखिरी वर्षों में जन्मे शंकर ने किया जिन्हें आदि शंकराचार्य के नाम से भी जाना जाता है। शंकर के तीन मूल मन्त्र हिन्दू धर्म-दर्शन के पुनरुत्थान की आधारशिला बन गये। इन तीनों मूल मन्त्रों की चर्चा ब्रह्म सूत्र की टीका में की गयी है, जो निम्नवत् है :

(i) ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या।
यानि, ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है।

(ii) सर्व खलु इदम् ब्रह्मम्।
यानि, जो कुछ भी अस्तित्व में है ब्रह्म सबमें है, और

(iii) अहम् ब्रह्मास्मि।
यानि, मैं ही ब्रह्म हूँ।

शंकर अपने दर्शन में ब्रह्म को ही प्रतीक के रूप में स्थापित करते हैं। यहां महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि जब वैदिक साहित्य द्वारा स्थापित ब्रह्म की सत्ता को चुनौती देकर बुद्ध ने इस दर्शन पद्धति को मटियामेट कर दिया था, तब शंकर पराजित प्रतीक (ब्रह्म) को छोड़ किसी नये प्रतीक का सृजन क्यों नहीं करते? पर शंकर ने पराजित प्रतीक ब्रह्म को ही पुनर्स्थापना करने की ठानी। इसलिये महत्त्वपूर्ण यह हो जाता है कि इन मूल कारणों को ढूँढ़ा जाये जिसके चलते ब्रह्म के अतिरिक्त शंकर के पास और कोई विकल्प था ही नहीं। क्योंकि शंकर का कार्य हिन्दू धर्म-दर्शन की पुनर्स्थापना तक ही सीमित नहीं था। शंकर मूलतः हिन्दू धर्म-दर्शन की पुनर्स्थापना के नाम पर हिन्दू समाज व्यवस्था के दर्शन की पुनर्स्थापना करना चाहते थे। क्योंकि, इतिहास के बढ़ते कदम के

साथ यदि व्यवस्था का दर्शन ही विलुप्त हो जाता, तो व्यवस्था के भी विलुप्त हो जाने से कोई रोक नहीं सकता था। इसलिए, हिन्दू समाज व्यवस्था के दर्शन की पुनर्स्थापना करना शंकर की प्राथमिकता बन गई।

ब्रह्म क्या है : हिन्दू धर्म-दर्शन में ब्रह्म सर्वोच्च सत्ता है। ब्रह्म ही उत्पत्ति का कारण और स्रोत दोनों हैं। उपनिषद् में कहा गया है कि "ब्रह्म को चक्षु देख नहीं सकते, शब्द संवाद नहीं कर सकते, ब्रह्म कल्पना से परे है, मस्तिष्क और विवेक की पहुँच से बाहर है। ब्रह्म जानने और न जानने से ऊपर है। ब्रह्म ही पूर्ण है, ब्रह्म ही अन्तिम सत्य है, ब्रह्म का न आदि है न अन्त, ब्रह्म को जानने का दावा करने वाला ब्रह्म को जानता ही नहीं, और ब्रह्म के प्रति अज्ञानता प्रकट करने वाला ही ब्रह्म को जानता है। ब्रह्म ही सत् चित् आनंद अर्थात् सच्चिदानन्द है। ब्रह्म का अस्तित्व सृष्टि से पूर्व है, ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड की आत्मा है" ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं। (i) अमूर्त यानी, परब्रह्म या परमात्मा, (ii) मूर्त यानी संसार। इस सिद्धान्त के मुताबिक जो ज्ञानी हैं, उनके लिए ब्रह्म अमूर्त है और जो अज्ञानी हैं, उनके लिये ब्रह्म मूर्त है—संसार के रूप में। हिन्दू धर्म-दर्शन जिसका मौलिक नाम वर्णाश्रम धर्म था, में ब्रह्म की सत्ता इतनी बलवती है कि जीवन से जुड़ी हर महत्त्वपूर्ण चीज के नामकरण में ब्रह्म जुड़ा है। मसलन, 'ब्रह्माण्ड' यानी अनन्त जिसकी सीमा में ही तारे, ग्रह, उपग्रह, सब कुछ आते हैं। पुरुष के जीवन का शुद्धतम और सर्वोत्तम चरण वह माना जाता है जिसमें उसका सम्बन्ध नारी से नहीं हुआ माना जाता है, तथा वह सीखने की प्रक्रिया में होता है यानी 'ब्रह्मचर्य'। वर्ण व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान प्राप्त वर्ण को 'ब्राह्मण' वर्ण कहा गया, तथा वेदों की व्याख्या तथा उन पर टिप्पणी प्रस्तुत करने वाले प्रथम ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' ग्रन्थ कहा गया। ज्ञान के चरमोत्कर्ष को 'ब्रह्म ज्ञान' कहा गया तथा शस्त्रों में अपराजेय शस्त्र को 'ब्रह्मास्त्र' कहा गया।

उत्पत्ति का सिद्धान्त

लगभग हर धर्म-दर्शन में सृष्टि एवं मानव उत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या है। वेदों में भी उत्पत्ति का सिद्धान्त है, पर हिन्दू धर्म-दर्शन मात्र एक दर्शन है, जिसमें मानव की उत्पत्ति नहीं, बल्कि मानव वर्गों के उत्पत्ति का सिद्धान्त

प्रतिपादित किया गया है। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद का पुरुष सूक्त मील का पत्थर है, क्योंकि इसी सूक्त में सृष्टि एवं मानव वर्गों के उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त की एक स्तुति के अनुसार—"आदि पुरुष (प्रजापति) जिनकी उत्पत्ति सृष्टि के पूर्व ही हो चुकी थी, की देवताओं ने, जो उन्हीं की सन्तान थे, उन्हीं के लिये और उन्हीं के द्वारा 'दैवीय बलि' चढ़ायी। इस 'दैवीय बलि' के फलस्वरूप प्रजापति के विभिन्न अंगों से उत्पत्ति होती है : मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य तथा पैर से शूद्र। मस्तिष्क से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य और मुख से ही इन्द्र और अग्नि, श्वास से पवन, नाभि से वायु तथा इसी 'दैवीय बल' के परिणामस्वरूप ये 'पवित्र सिद्धान्त' भी उत्पन्न हुए।

ब्राह्मणवाद के सिद्धान्त की उत्पत्ति

पुरुषसूक्त में ही उत्पत्ति के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है। उत्पत्ति के इसी स्तुति गीत में सृष्टि के उत्पन्न होने के सिद्धान्त के साथ ही, मानव के चार वर्णों के उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थापित होता है। उत्पत्ति के इस दर्शन से तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है।

1. **मानव वर्गों के रूप में वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त की उत्पत्ति :** इस सिद्धान्त में यह स्थापित किया जाता है कि मानव-अंगों की ही तरह, प्रत्येक वर्ण एक-दूसरे की आवश्यकता है तथा एक-दूसरे के पूरक भी।
2. **वर्णों के जन्मजात गैर-बराबरी के सिद्धान्त की उत्पत्ति :** चूँकि मानव शरीर में मुख सर्वोत्तम अंग माना जाता है, मुख के बाद भुजायें, जो शक्ति की प्रतीक हैं, फिर उसके बाद जाँघ एवं निम्नतर अंग, पैर होते हैं। चूँकि मानव अंग जन्म से ही शरीर संरचना में एक स्थान पर निश्चित होते हैं, अतः वर्णों की तुलना मानव अंगों से कर वर्णों की गैर-बराबरी को जन्मजात एवं चिर-स्थायी बना दिया गया। यह गैर-बराबरी भी अनूठी है, क्योंकि इसमें ऊपर से हर एक वर्ण अपने से निचले वर्ण से श्रेष्ठ है, जिसमें शूद्र से निम्न कोई वर्ण नहीं है तथा ब्राह्मण से उच्च कोई वर्ण नहीं है।

3. **उत्पत्ति के ईश्वरीय-इच्छा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना :** गैर-बराबरी हर सभ्यताओं में रही है, पर उत्पत्ति के इस सिद्धान्त में जन्मजात गैर-बराबरी के सिद्धान्त को ईश्वर की इच्छा बताकर इस सिद्धान्त को धार्मिक पवित्रता का जामा पहना दिया गया। दुनिया की समस्त सभ्यताओं में मानव-निर्मित गैर-बराबरी को मानव ने ही लड़ा है। पर ईश्वर के विरुद्ध लड़ाई के उदाहरण कम ही मिलते हैं। ब्राह्मणवाद की सबसे बड़ी शक्ति यही रही है। क्योंकि, इस व्यवस्था के चलते गैर-बराबरी को ईश्वर-सृजित करार दे दिया गया। गैर-बराबरी में समाज व्यवस्था से पीड़ित वर्ग में चेतना में यह भी भर दिया गया कि यह व्यवस्था ईश्वर की इच्छा है। अतः इससे लड़ने का अर्थ हुआ ईश्वर से लड़ना। यह बात सर्वविदित है कि सभ्यता चाहे जो भी हो, उसका एक धर्म होता है और धर्म को मानव अपनी आवश्यकता मानता रहा है। ईश्वर के समक्ष मानव अपना शीश झुकाता रहा है न कि संघर्ष। यही एक मूल कारण है कि ब्रह्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध व्यवस्था के भीतर के मानव ने ठोस एवं निर्णायक जेहाद नहीं छेड़ा। जिन लोगों ने (अछूत आदिवासी) व्यवस्था के बाहर रहकर इसके विरुद्ध लड़ाई लड़ी, वे इसे पराजित करने में असफल रहे, इसलिये ब्राह्मणवादी दर्शन और उसकी समाज व्यवस्था भारतीय सभ्यता की संस्कृति और धर्म का अंग बन गयी।

ब्रह्म स्थापना : चारों वेदों—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में ब्रह्म का व्यापक जिक्र नहीं आता, पर वैदिक साहित्य में ही ब्रह्म की स्थापना हो जाती है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों को दो श्रेणियों में रखा जाता है। श्रुतियां यानी कि वैदिक साहित्य तथा स्मृतियां यानी कि उत्तर वैदिक साहित्य। वैदिक साहित्य में चारों वेद आते हैं तथा वेदों के परिशिष्ट : ब्राह्मण ग्रन्थ, अरण्यक और उपनिषद् भी। उत्तर वैदिक साहित्य में महाकाव्य, पुराण और संहिताएँ आती हैं।

ऋग्वेद में ब्राह्मणों का जिक्र एक रहस्यमयी जादुई सामाजिक श्रेणी के रूप में आता है। ऋग्वेद में ब्राह्मण सम्मानित श्रेणी में नहीं थे। ऋग्वेद

में ही एक जगह इनकी तुलना 'बरसाती मेढकों' से करके इनका उपहास भी किया है। ऋग्वेद में प्रजापति को सृष्टिकार के रूप में पेश किया गया है, जिसे उपनिषदों ने ब्रह्म के ही एक पूर्ववर्ती के रूप में स्थापित कर दिया।

वेदों की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थों ने पहली बार यज्ञों एवं बलि सम्बन्धी कर्म-काण्डों को सहज एवं सरल रूप से व्याख्यायित किया। पर इनमें भी ब्रह्म की चर्चा नहीं हुई है। अरण्यक ग्रन्थों की विषयवस्तु जंगलों में वास करने वाले ऋषियों के लिये थी, पर उपनिषद् ग्रन्थों में ब्रह्म की स्थापना होती है। वस्तुतः उपनिषदों की विषय-वस्तु ही 'ब्रह्म और आत्मा' बन जाती है। चूंकि उपनिषद् ग्रन्थों को वेदान्त कहा गया है जिसका अर्थ है : वेदों का निचोड़। अतः उपनिषदों में स्थापित दर्शन को वैदिक दर्शन ही माना जाता है। अतः ब्रह्म की स्थापना वैदिक साहित्य में ही हो जाती है।

वाद क्या है : चूँकि ब्रह्म ही सृष्टि एवं वर्ण-आधारित समाज के सिद्धान्तों का प्रतिपादक एवं संस्थापक है, अतः यह दर्शन पद्धति ब्रह्मवाद या ब्राह्मणवाद के नाम से प्रचलित हो गयी है। क्योंकि, जब कोई दर्शन या सिद्धान्त किसी काल-खण्ड विशेष में एक पूर्ण व्यवस्था की स्थापना करता है तो वह 'वाद' हो जाता है। इस 'वाद' की पहचान या तो सिद्धान्त के प्रतिपादक के नाम से जुड़ जाती है या स्वयं सिद्धान्त से ही। जैसे कार्ल-मार्क्स ने एक दर्शन-पद्धति को स्थापित किया तो वह 'मार्क्सवाद' के रूप में प्रचलित हो गया। मार्क्स ने साम्यवादी व्यवस्था की कल्पना की तो 'साम्यवाद' के रूप में भी इस सिद्धान्त को जाना गया। जान लाक ने 'उदारवादी लोकतन्त्र' की स्थापना की तो उसे 'उदारवाद' के नाम से जाना गया। गौतम बुद्ध ने जिस दर्शन की स्थापना की उसे बौद्ध दर्शन के नाम से जाना गया। डॉ. अम्बेडकर ने जिस दर्शन की स्थापना की उसकी पहचान आज 'अम्बेडकरवाद' के रूप में स्थापित हो चुकी है।

भ्रम की स्थिति : वैदिक साहित्य में वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त की स्थापना होती है, जिसमें ब्राह्मण वर्ण सर्वोच्च स्थान पर होता है। यह विचार भी प्रचलित हो गया कि व्यवस्था का सृजन ब्राह्मणों ने किया है जिसमें उनका स्थान शीर्ष है। इसी आधार पर स्थापित व्यवस्था को 'ब्राह्मणवाद' कहना कुछ लोगों ने तर्क-सम्मत समझा। यदि यह तर्क मान लिया जाय

तो, फिर यह भी मानना पड़ेगा कि ब्राह्मण वर्ण का उदय ब्राह्मणवादी व्यवस्था के उदय से पूर्व ही हो गया तथा इस वर्ण ने एक सिद्धान्त की स्थापना कर दी और उसमें अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर ली। तब यह भी मानना पड़ेगा कि ऋग्वेद का पुरुष सूक्त अर्थहीन है, क्योंकि इसमें तो चारों वर्ण एक साथ उत्पन्न होते हैं। तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता समाप्त कर ब्राह्मणवाद का विनाश किया जा सकता है। इस स्थिति में हमले का निशाना 'ब्राह्मण वर्ण' हो जाता है और ब्राह्मणवादी व्यवस्था साफ-साफ बच निकलती है। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणवादी व्यवस्था हमले से सुरक्षित रह जाती है और परिणामस्वरूप ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता भी सुरक्षित रह जाती है। भारतीय इतिहास में यही हुआ है। हमला व्यवस्था पर न होकर एक वर्ण पर होता रहा है। जिसके कारण न तो ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता समाप्त होती है और न ही व्यवस्था, क्योंकि वर्ण-व्यवस्था के अस्तित्व में ही ब्राह्मण वर्ण का अस्तित्व एवं श्रेष्ठता निहित है। वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था को डॉ. अम्बेडकर ने ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था की जगह हिन्दू समाज व्यवस्था कहना ज्यादा उपयुक्त समझा। क्योंकि उन्हें यह मालूम था कि व्यवस्था को धर्म का चोला पहनाकर व्यवस्था के नेतृत्व ने व्यवस्था के विरुद्ध सम्भावित विद्रोहों को रोकने का कार्य किया। इसीलिये, वे 'हिन्दू धर्म' को मूलतः एक सामाजिक व्यवस्था मानते हैं, न कि मात्र एक धार्मिक व्यवस्था।

ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था क्या है : विचारधारा हो या संगठन, इनकी उत्पत्ति के कारण होते हैं। ब्राह्मणवाद शासक वर्णों की विचारधारा है। वैदिक काल में जब इस विचारधारा का विकास होता है तो वैदिक जन संक्रमण काल के दौर से गुजर रहे थे। वे कृषि कार्य करना सीख रहे थे तथा ग्रामीण सभ्यता की ओर अग्रसर थे। उस समय (लगभग 1500 ई. पू. से 1000 ई पू.) लोहे का आविष्कार नहीं हुआ था। अतः कृषि एवं ग्रामीण सभ्यता का विकास क्रान्तिकारी ढँग से नहीं हुआ। चूँकि वर्ण-आधारित समाज-व्यवस्था के सिद्धान्त का उदय हो चुका था, अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सम्पत्ति की अवधारणा एवं सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रश्न भी इसके पूर्व ही उठ चुका होगा, पर यह आरंभिक अवस्था ही रही होगी।

क्योंकि, वैदिक साहित्य में ब्राह्मणवादी सिद्धान्त के अनुरूप समाज व्यवस्था का चित्रण नहीं मिलता है।

उत्तर वैदिक काल (लगभग 900 ई.पू. 500 ई.पू.) में लोहे का व्यापक रूप में प्रयोग आरंभ हो गया था तथा कृषि-आधारित ग्रामीण सभ्यता की स्थापना के साथ सामाजिक संस्थाओं की स्थापना भी हो चुकी थी। यही वह काल है, जब ब्रह्म द्वारा प्रतिपादित वर्ण-आधारित सिद्धान्त सामाजिक संस्थाओं के रूप में स्थापित हो गये।

स्वामित्व के लिये व्यवस्था का उदय : वैदिक काल में व्यवस्था का सैद्धान्तिक ढांचा खड़ा हुआ तथा उत्तर वैदिक काल में व्यवस्था ने संस्थागत स्वरूप प्राप्त कर लिया। भूमि, मानव-श्रम, पशु एवं युद्ध सामग्री ही मुख्य सम्पत्ति थे, इस तरह प्रकृति-प्रदत्त सम्पदा एवं मानव-श्रम पर स्वामित्व के लक्ष्य को लेकर ही ब्राह्मणवाद का जन्म हुआ, तथा स्वामित्व को चिरस्थायी बनाने के लिये सामाजिक संस्थाओं का जन्म हुआ। भारत के अलावा जिन सभ्यताओं में ब्राह्मणवाद जैसी विचारधारा का जन्म नहीं हुआ, वहाँ पर राज्य जैसी संस्था का उदय हुआ। प्राकृतिक सम्पदा एवं मानव श्रम पर स्वामित्व को बनाये रखने के लिये इन सभ्यताओं में भी सामाजिक संस्थाओं का उदय हुआ। पर भारत जैसी वर्ण-आधारित व्यवस्था का उदय अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। यही एक मूल कारण है कि शोषण पर आधारित अन्य सभ्यताओं में व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा तथा वे विकास की ऊँचाइयाँ छूते गये, पर भारत में जड़ता ने सभ्यता के पिछड़ेपन को सुनिश्चित-सा कर दिया।

इतिहास हमें दर्शाता है कि हर सभ्यताओं में समय-समय पर उच्च वर्ग एवं मध्यम वर्ग के बीच से प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का एक बड़ा तबका व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा हुआ, तथा आरम्भिक दौर में तो नेतृत्व भी प्रदान किया। इस तर्क को भारत में लाकर देखा जाए, तो उच्च वर्णों से ऐसा कोई बड़ा तबका नहीं निकला जो ब्राह्मणवाद के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया हो तथा व्यवस्था से पीड़ित जनता को व्यवस्था के विरुद्ध गोलबन्द किया हो। व्यक्तिगत तौर पर तमाम बुद्धिजीवी व्यवस्था के लाभों को छोड़कर व्यवस्था के विरुद्ध खड़े हुए, पर इतिहास के किसी भी दौर में इस तरह की एक बड़ी चिन्तन धारा नहीं बन पायी। यह भारतीय समाज का दुर्भाग्य रहा है।

ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था की विशिष्टताएँ : चूँकि भारत में ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था का जन्म राज्य से पूर्व ही हो चुका था, इसलिये राज्य के समस्त चरित्र भी इसमें देखे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में वर्ण-व्यवस्था का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

वर्ण-व्यवस्था

1. इस व्यवस्था के मूल्यों के अनुसार ब्राह्मण वर्ण-समाज का नैतिक और आध्यात्मिक अभिभावक होता है। इनका कार्य शिक्षक, धार्मिक कर्मकाण्ड और धार्मिक संस्थाओं के नेतृत्व सहित राजसत्ता पर नजर रखना है। अपने कार्यों के लिये ये सीधे ब्रह्म के प्रति उत्तरदायी होते हैं, किसी मानवकृत संस्था के नहीं।
2. क्षत्रिय वर्ण का कार्य शासन-प्रशासन तथा बाह्य एवं आन्तरिक खतरों से व्यवस्था की रक्षा करता है। वैदिक सभ्यता की यह मूल विशेषता है कि यहाँ राजा ब्राह्मण वर्ण के प्रति उत्तरदायी होता है, जबकि दुनिया की अन्य सभ्यताओं में राजा स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता है, और इसलिए वह ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होता है।
3. वैश्य वर्ण का कार्य कारोबार का है। यह वर्ण मूलतः क्षत्रिय और शूद्र के बीच लिंक का कार्य करता है। क्योंकि यही ऐसा वर्ण है जो उत्पादन करने वाले शूद्र वर्ण से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है, तथा शासन करने वाले क्षत्रिय वर्ण से भी। वस्तुतः उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था की भी उनकी जिम्मेदारी रही है। वैश्य-वर्ण की हस्ती समय-समय पर बदलती रही है और कभी-कभी तो इनको शूद्रों की श्रेणी में ढकेल दिया जाता रहा है।
4. शूद्र वर्ण का कार्य मुख्यतः उत्पादन का है। यद्यपि वे व्यवस्था के अंग हैं, पर इन्हें कई तरह के नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया—शिक्षा, शस्त्र, सम्पत्ति जैसे मूलभूत अधिकारों तक इनकी पहुँच सीमित रही है। शूद्र वर्ण दो हिस्सों में स्पष्ट रूप से विभाजित है—प्रथम श्रेणी उत्पादन करती है, तथा द्वितीय श्रेणी कुशल कारीगरों की है, प्रथम श्रेणी को ऊर्ध्वगामी पिछड़ा वर्ग

कहते हैं, तथा द्वितीय श्रेणी को अति पिछड़ा वर्ग कहते हैं।

5. वर्ण-व्यवस्था के भीतर यों तो चार वर्ण होते हैं, सिद्धान्तः समाज में इन वर्णों का स्थान बराबर नहीं है। पर मूल विभाजन द्विज और अद्विज के बीच का है। द्विज वे हैं जिन्हें उपनयन संस्कार का अधिकार होता है। उन्हें समस्त नागरिक अधिकार भी प्राप्त होते हैं। इन नागरिक अधिकारों में शिक्षा एवं स्वामित्व का अधिकार प्रमुख होता है। जिन्हें उपनयन संस्कार का अधिकार नहीं होता है, वे नागरिक अधिकारों से वंचित होते हैं।
6. द्विज या उच्च तीनों वर्णों को बौद्धिक श्रम तथा अर्द्ध-बौद्धिक ही करने होते हैं, जबकि शूद्रों को शारीरिक श्रम अनिवार्य होता है तथा उनका स्वयं के श्रम पर भी स्वामित्व नहीं होता।
7. वर्णों के पेशेगत पहचान ने शूद्रों में सैकड़ों उपजातियों के उदय के मार्ग को भी प्रशस्त कर दिया। क्योंकि द्विज वर्णों के पेशों में उप-पेशों के उदय की कोई जगह नहीं थी। जबकि आत्मनिर्भर ग्रामीण सभ्यता की व्यापक जरूरतों के अनुसार सैकड़ों उप-पेशों का उदय हुआ। अतः वर्ण-व्यवस्था के पेशेगत आधार के तर्क को और आगे बढ़ने का मौका मिला और देखते ही देखते शूद्रों में सैकड़ों जातियों का उदय हो गया। हां, द्विज वर्णों में भी उपजातीय श्रेणियाँ विकसित हुईं, पर यह बँटवारा पेशेगत न होकर 'गोत्र' तक सीमित रहा। जबकि शूद्र वर्ण की उपजातियों में विवाह-सम्बन्ध भी वर्जित हो गये। विवाह सम्बन्ध ही एक ऐसा माध्यम था जो जातियों की पेशेगत पहचान को सुरक्षित भी रखता है, तथा पहचान को तोड़ने की भी क्षमता रखता है।
8. उत्तर वैदिक साहित्य ने पुनर्जन्म के दोहरे सिद्धान्त की स्थापना कर द्विजों और अद्विजों में चेतना और आस्था के स्तर पर भेद कर दिया। इससे व्यवस्था जटिल और रूढ़ हो गयी। शूद्रों को चौथे पायदान पर सुनिश्चित करने के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त की स्थापना कर दी गई। ऐसा करते समय यह विचार स्थापित किया गया कि तुम्हारी वर्तमान स्थिति विगत जन्मों के कर्मों का परिणाम है। इस जन्म में अपना कर्म करो तो आगामी जन्म

में सुख ही सुख प्राप्त होंगे। जाहिर है, यह व्यवस्था उनके लिये ही की गयी होगी जो अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं रहे होंगे। शूद्रों के अतिरिक्त भला वह कौन-सा वर्ण हो सकता था जो अपनी स्थिति से असन्तुष्ट रहा हो। जबकि वहीं पर उच्च वर्णों के लिये उपनयन संस्कार के माध्यम से दूसरे जन्म का साक्षात्कार उनके जीवनकाल में ही करा दिया गया। यही एक मूल कारण रहा कि शूद्र बार-बार यह माँग उठाते रहे कि उपनयन संस्कार का अधिकार उन्हें भी प्राप्त हो। शूद्रों ने उपनयन संस्कार की अवधारणा के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाई।

ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में राज्य एक गौड़ संस्था

चूँकि ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था का उदय राज्य जैसी संस्था के उदय के पूर्व ही हो गया, तथा ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था को ईश्वर प्रदत्त स्थापित कर धर्म का चोला पहना दिया गया, इसलिए, समाज की मान्यताएँ और मूल्य राज्य की मान्यताओं और मूल्यों पर अपना सिक्का जमाये रखे। राज्य जैसी संस्था का कार्य ब्राह्मणवादी व्यवस्था की मान्यताओं की रक्षा में ही लगा रहा, तथा राज्य इतिहास के किसी भी चरण में सामाजिक व्यवस्था के भार से अपने आपको मुक्त नहीं कर सका। यही एक मूल कारण है कि जब भी राज्य शक्ति पर गैर-ब्राह्मणवादियों का कब्जा रहा, वे ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था को नमस्कार करते रहे, और इस तरह व्यवस्था की सेहत में कोई अन्तर नहीं आया।

ब्राह्मणवाद और सामाजिक न्याय आंदोलन

ब्राह्मणवाद और ब्राह्मणवादी विचारधारा की व्याख्या प्रस्तुत की जा चुकी है। जब यह स्थापित हो चुका है कि ब्राह्मणवाद का उदय स्वामित्व के प्रश्न पर हुआ, और सदियों पूर्व स्थापित वर्ण-स्वामित्व आज भी बरकरार है। तब इसके विरुद्ध किसी भी आन्दोलन की विषय-वस्तु स्वामित्व के खात्मों के अलावा और क्या हो सकती है?

ब्राह्मणवाद और इसकी समाज व्यवस्था का जन्म लगभग 3000 वर्ष पूर्व हुआ था। इन तीन हजार वर्षों को तीन युगों से गुजरना पड़ा

है। (i) प्राचीन युग (ii) मध्य युग, और (iii) आधुनिक युग या औद्योगिक युग। इस लम्बे काल में सम्पत्ति की अवधारणा और व्यापक हुई, स्वामित्व की अवधारणा का विकास भी हुआ, तथा इनकी परिभाषायें भी बदलीं। इसे निम्न ढंग से समझा जा सकता है।

प्राचीन कालीन सम्पदा

(क) प्रकृति-प्रदत्त सम्पदा	:	भूमि, वन सम्पदा एवं पशु।
(ख) मानव-निर्मित सम्पदा	:	आखेट एवं युद्ध सामग्री।
(ग) मानव श्रम	:	बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम।

मध्य युगीन सम्पदा

(क) प्रकृति-प्रदत्त	:	भूमि, वन सम्पदायें, पशु, जल तथा धातुएँ।
(ख) मानव-निर्मित सम्पदा	:	कृषि-उत्पाद, औजार, लघु उद्योग, युद्ध सामग्री, संस्थाएँ आदि।
(ग) मानव श्रम	:	बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम।

आधुनिक युगीन सम्पदा

(क) प्रकृति-प्रदत्त सम्पदा	:	भूमि, खनिज पदार्थ, वन सम्पदायें, जल, पशु एवं वन्य जीव।
(ख) मानव-निर्मित सम्पदा	:	उद्योग, व्यवसाय, टैकनोलॉजी, आधुनिक ज्ञान एवं संस्थाएँ।
(ग) मानव श्रम	:	बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम।

इन्हीं उपरोक्त संसाधनों पर स्वामित्व की रक्षा के लिये राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्थाओं का विकास होता है।

यदि ब्राह्मणवादी विचार एवं व्यवस्था को ध्वस्त करना है, तो ब्राह्मणवादी विचार एवं इसकी व्यवस्था के उन कारणों को समाप्त करना होगा जिनकी वजह से इन विचारों एवं संस्थाओं का उदय हुआ। इन कारणों

को तोड़ने का अर्थ हुआ कि पूर्व-स्थापित प्राकृतिक एवं मानवकृत सम्पत्ति से वर्ण-स्वामित्व को समाप्त करना। ऐसा करने के लिये निम्न कार्य करने आवश्यक होते हैं–

प्रथम प्रकृति-प्रदत्त सम्पदा पर जनता का स्वामित्व स्थापित करना यानी, भूमि का स्वामी वह बने जो भूमि में श्रम लगाकर उत्पादन करता है। वन-सम्पदा पर स्वामित्व उनका हो जिन्होंने वन को जीवन का आधार बनाया हो। पशुओं का स्वामी वह हो जो उसका पालन-पोषण करता हो। खनिज सम्पदा की सम्पत्ति का हिस्सा स्थानीय जनता को भी सीधे मिले।

द्वितीय मानव निर्मित औद्योगिक सम्पदा पर राज्य का एकाधिकार हो, तथा राज्य का चरित्र सच्चे अर्थों में 'कल्याणकारी' हो, और निजी स्वामित्व का समूल खात्मा हो।

तृतीय ज्ञान और शास्त्र पर से वर्णों का एकाधिकार समाप्त कर पूरी जनता के लिये इसे सुलभ बनाया जाय। राज्य स्वयं अपनी पहल पर आधुनिक ज्ञान की सुविधाएँ सर्वजन को उपलब्ध कराये तथा शस्त्र-स्वामित्व की एक प्रगतिशील नीति बने।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किसी भी राजनैतिक आन्दोलन के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह सर्वप्रथम, राज्य शक्ति के उपयोग से व्यवस्था में हस्तक्षेप करे तथा स्वामित्व को बदले, तथा द्वितीय, गहन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आन्दोलनों द्वारा पूर्व-स्थापित ब्राह्मणवादी मूल्यों को नष्ट करे तथा राज्य पर दबाव बनाये रखे ताकि राज्य पुरानी व्यवस्था को तोड़ने के लिये विवश बना रहे।

सामाजिक न्याय आन्दोलन के पाँच वर्ष पूरे हो गये। आन्दोलन की तरफ से ऐसा एक भी कदम नहीं उठाया गया जिन्हें किन्हीं भी अर्थों में ब्राह्मणवाद या इसकी व्यवस्था को तोड़ने वाला कहा जा सकता है। जबकि, केन्द्र के अतिरिक्त राज्यों में भी इनकी सरकारें हैं। पर, यह भी सम्भव है कि व्यवस्था का भार इतना अधिक हो कि कुछ राज्यों में इनकी सरकारें होने तथा इनके चाहने के बावजूद भी वे इसे तोड़ पाने में अशक्त महसूस कर रहे हों। तब प्रश्न यह उठता है कि इन पाँच वर्षों में संसद या संसद के बाहर इनके राजनैतिक आन्दोलन के मुद्दे एवं नारे क्या रहे हैं। वस्तुतः नारे देना तो और भी आसान है। सामाजिक न्याय आन्दोलन मंच

ने व्यवस्था के भौतिक आधारों को चिह्नित करते हुए उनके विरुद्ध नारे भी नहीं दिये, संघर्ष का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि, व्यवस्था विरोध का जो स्वप्न भी नहीं देख सकते वे व्यवस्था विरोध के नारे कैसे पैदा कर सकते हैं।

वस्तुतः दलित मुक्ति के प्रश्न या ब्राह्मणवाद के खात्मे के प्रश्न पर कांग्रेस, भाजपा, शिवसेना, सी.पी.आई., सी.पी.आई. (एम), जनता दल, समाजवादी पार्टी, डी.एम.के., तेलगुदेशम् आदि दलों में मौलिक रूप से कोई अन्तर नहीं है।

दलित मुक्ति का प्रश्न नयी व्यवस्था के सृजन का प्रश्न है

व्यवस्था के भीतर सुधार चाहे जैसा कर लें, इससे दलित मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होने वाला है। दलित मुक्ति का प्रश्न व्यवस्था के पूर्ण निषेध में ही निहित है। अतः दलित मुक्ति का प्रश्न मूलतः एक नयी व्यवस्था के सृजन का प्रश्न है। पर यह कौन करेगा? यह एक जटिल प्रश्न है और इसका हल भी उतना ही जटिल है।

व्यवस्था परिवर्तन की दो शक्तियाँ

प्रथम–वह सामाजिक श्रेणी जिसको इस व्यवस्था से कोई लाभ न हो, व्यवस्था-विरोध जिसका दर्शन हो, तथा व्यवस्था विरोध की जिसकी ऐतिहासिकता हो।

द्वितीय–यह विचारधारा जिसका उदय ही व्यवस्था के विरोध में हुआ हो, तथा जिसकी व्यवस्था विरोध की ऐतिहासिकता हो। पर इसका निर्णय कैसे हो कि वह कौन-सी सामाजिक श्रेणी है जिसकी मुक्ति व्यवस्था के सर्वनाश में निहित है, तथा जिसका व्यवस्था विरोध का कोई इतिहास है; और वह कौन-सी विचारधारा है, जिसका जन्म व्यवस्था के विरोध एवं प्रगतिशील व्यवस्था की रचना के लिये ही हुआ हो, तथा इसके विरोध की कोई ऐतिहासिकता भी है? निम्नलिखित विश्लेषण में इस प्रश्न का हल ढूँढ़ा जा सकता है।

प्रथम प्रश्न का हल–भारतीय समाज में यदि विभाजन रेखाएँ खींचनी हों तो, इसका मार्ग क्या हो सकता है? बगैर इस प्रश्न का हल ढूँढ़े समाज में मौजूद अन्तर्विरोधों को समझना नामुमकिन है।

1. प्रथम रेखा का मार्ग अछूत, आदिवासी तथा गैर अछूतों के बीच का है। यानी कि प्रथम रेखा का मार्ग वर्ण-व्यवस्था के सदस्यों एवं व्यवस्था के बाहर की सामाजिक श्रेणियों के बीच का है।
2. दूसरा मार्ग वर्ण व्यवस्था के भीतर ही शूद्रों एवं उच्च वर्णों के बीच का है।
3. तीसरा मार्ग शूद्रों के बीच दो भिन्न पेशेगत सामाजिक श्रेणियों—कुशल श्रमिक वर्ग और उत्पादक वर्ग, यानी कि पिछड़े शूद्र और अति पिछड़े शूद्र के बीच का है।
4. चौथा मार्ग धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा अन्य सामाजिक श्रेणियों—वर्ण-व्यवस्था के सदस्यों तथा दलित वर्ग के बीच का है।

प्रथम मार्ग : ऐतिहासिक दृष्टिकोण से दलित वर्ग व्यवस्था के बाहर रहते हुए भी व्यवस्था के बोझ को ढोता रहा है। और यही वह सामाजिक श्रेणी है, जो व्यवस्था के उदय से ही व्यवस्था के विरुद्ध लड़ती रही है। तथा यही वह सामाजिक श्रेणी है, जो व्यवस्था के हर लाभों से वंचित भी रही है। इसीलिये व्यवस्था के पतन का सबसे बड़ा लाभ भी इसी वर्ग को मिलता है। व्यवस्था का विरोध इस वर्ग की ऐतिहासिक विवशता है, तथा इनका ऐतिहासिक दायित्व भी। अतः व्यवस्था विरोधी संग्राम का अगुआ भी यही वर्ग होगा। अम्बेडकरवाद के रूप में व्यवस्था विरोधी दर्शन के भी ये धनी हैं।

द्वितीय मार्ग—चूँकि व्यवस्था के भीतर नये परिवर्तनों के चलते शूद्र वर्ण का एक हिस्सा ऊर्ध्वगामी शूद्र (पिछड़ा वर्ग) व्यवस्था का हिस्सा आरंभ से ही रहा है तथा व्यवस्था में ही अपनी मुक्ति तलाशता रहा है, अतः इस वर्ग का हित व्यवस्था को बनाये रखने में है, न कि तोड़ने में। यह अलग बात है कि अपने ही कारणों के चलते यह वर्ग व्यवस्था का अगुआ कभी नहीं बन सकता। पर व्यवस्था को कुछ और समय तक बनाये रखने की क्षमता इस वर्ग में अवश्य है।

तृतीय मार्ग—औद्योगीकरण के चलते परिवर्तनों ने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन भी लाये हैं। परिणामस्वरूप कुशल श्रमिक वर्ग, यानी अति पिछड़ा शूद्र दरिद्रनारायण की श्रेणी में आ गया है। इनका भी हित इस व्यवस्था को तोड़ने में ही है। चूँकि यह वर्ग भी व्यवस्था का

अंग शुरू से ही रहा है। अतः व्यवस्था विरोधी संग्राम के अगुआ होने की क्षमता इसमें नहीं है, पर व्यवस्था विरोधी संग्राम का एक सच्चा हमराही हो सकता है। क्योंकि इस व्यवस्था के पतन में ही इनका हित निहित है।

चतुर्थ मार्ग–मुस्लिम धार्मिक अल्पसंख्यक श्रेणी जिनका कभी इस देश में शासन भी रहा है, फिलहाल स्वयं को व्यवस्था का अंग ही मानते हैं। बौद्धिक स्तर पर ये अतीत में जीते हैं। इनका पतन तेजी से हो रहा है। और जब तक पतन की गति इन्हें दलितों की श्रेणी में नहीं ला पटकती तब तक ये व्यवस्था परिवर्तन की मांग नहीं करेंगे। मुस्लिम समाज का दलित तबका सवर्ण मुस्लिमों से स्वयं को अलग नहीं कर पा रहा है। संभवतः दो दशक बाद व्यवस्था परिवर्तन की माँग करना इनकी मजबूरी बन जाय, और इस तरह ये भी व्यवस्था विरोध के संग्राम में कूद पड़ेंगे।

दलित वर्ग की ऐतिहासिकता–व्यवस्था विरोध दलित वर्ग की ऐतिहासिक विवशता है, तथा व्यवस्था बदलने का ऐतिहासिक दायित्व दलितों पर ही क्यों? इसको समझने के लिए इतिहास के पन्नों को फिर पलटना होगा। किसी सामाजिक श्रेणी की समाज में भूमिका स्थापित करने के लिये उस सामाजिक श्रेणी का इतिहास जानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि, सामाजिक श्रेणियों की भूमिका को आत्मपरक विश्लेषण या आत्मगत प्रयास से ही स्थापित नहीं किया जा सकता है। उनकी वस्तुस्थिति तथा उनकी ऐतिहासिक धरोहर काफी हद तक उनकी चेतना का निर्माण करती है और इस तरह कई सामाजिक श्रेणियों की भूमिका इतिहास ही निर्धारित कर देता है।

दलित वर्ग की ऐतिहासिकता पर कोई सार्थक बहस एक दुष्कर कार्य है। क्योंकि इनके पूर्वजों का अपना कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतः इनके इतिहास को जानने के लिये हमें उसी साहित्य का सहारा लेना पड़ता है, जिसमें इनका स्थान मध्ययुगीन युद्ध बन्दियों से भी बदतर है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के पन्नों को पलटने से दलित वर्ग की ऐतिहासिकता पर प्रकाश पड़ता है। इसलिये इस वर्ग की ऐतिहासिकता की छानबीन करने के लिये यही रास्ता समीचीन होगा। हड़प्पा की सभ्यता को बहस से अलग रखें तो प्राचीन भारत का आरम्भ लगभग (1500 ई. पू.) से होता है। हड़प्पा सभ्यता, जिसका काल लगभग (3000 ई.पू.) से लगभग

(2000 ई.पू.) तक का है, को बहस से अलग इसलिये रखना उचित है, क्योंकि हड़प्पा सभ्यता और वैदिक सभ्यता के बीच किसी प्रकार के सम्बन्धों का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यद्यपि कई विद्वान् यही मानते हैं कि अनार्य मूलतः हड़प्पा सभ्यता के निर्माता थे, पर किसी प्राकृतिक आपदा के चलते सभ्यता नष्ट हो गई, या आर्य नामक जन समूहों द्वारा नष्ट कर दी गई। परिणामस्वरूप, इसके निर्माता उस स्थान को छोड़ गये और इसी क्रम में आर्यजनों से इनका टकराव हुआ। वर्चस्व की इस लड़ाई में आर्यजनों की विजय हुई। यहीं से वैदिक सभ्यता की शुरुआत हुई। यद्यपि इस सदी के महानतम् चिन्तक डॉ. अम्बेडकर आर्य सिद्धान्त का जोरदार खंडन करते हैं, जिसमें वे यह सिद्ध करते हैं कि आर्य नामक प्रजाति न तो बाहर से आयी है और न ही आर्य-अनार्य युद्ध हुए थे।

लगभग 2300 वर्षों के प्राचीन भारतीय इतिहास को (1500 ई.पू. से 800 ई. सन्) समझना जितना दुष्कर है, उतना ही महत्त्वपूर्ण भी। क्योंकि इस काल में उत्पन्न साहित्य के वास्तविक रचना काल एवं उनके लेखन काल में एक हजार वर्षों से भी अधिक का अंतर है। जहाँ ऋग्वेद की रचना (1500 ई. पू. 1000 ई. पू.) के बीच मानी जाती है, वहीं इसका लेखन ईस्वी सन् आरम्भ होने के बाद होता है। यही समस्या उत्तर वैदिक साहित्य के साथ भी है। रचना और लेखन के बीच लम्बे अन्तराल से निम्न समस्यायें पैदा होती हैं :

प्रथम—चूँकि साहित्य अपने रचना काल के भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक आदि तमाम क्रियाकलापों एवं प्रगति का चित्र प्रस्तुत करता है, इसलिये, यदि किसी साहित्य का लिपिबद्धीकरण काल उसके रचना काल से भिन्न है, तो सम्भव है कि उक्त मौलिक साहित्य के लिपिबद्धीकरण में मिलावट हो जाय। कहने का आशय यह है कि उसमें रचना काल के साथ-साथ लिपिबद्धीकरण काल के चित्र भी उभरने लगते हैं।

द्वितीय—मौलिक रचनाकाल के पात्रों की भूमिका भी लिपिबद्धीकरण काल में मौजूद सामाजिक पात्रों से प्रभावित हो सकती है, तथा पात्रों की विभिन्न काल के साहित्य में पुनरावृत्ति तथा उनका विलुप्तीकरण भी सम्भव हो जाता है।

तृतीय—मौलिक रचना और लिपिबद्धीकरण में काल-वैभिन्य के चलते, मौलिक रचना का ठीक-ठाक काल निर्धारण करना भी कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त विसंगतियों के बावजूद भी इतिहास लेखन होता है, उपलब्ध साहित्य की विषयवस्तु, उनके दर्शन, पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा रचना का काल भी निर्धारित किया जाता है। क्योंकि, पुरातत्व विज्ञान ने खुदाई में प्राप्त प्राचीन काल की वस्तुओं से काल-निर्धारण की विधि विकसित कर ली है। इसके अलावा साहित्य में वर्णित परिवेश, साहित्य की विषय वस्तु तथा भाषा से भी साहित्य को एक क्रम में रखने की सहूलियत मिल जाती है। क्योंकि, सभ्यताओं के विकास में कुछ नियम सार्वभौमिक होते हैं और उनका विकास निश्चित चरणों को पार करते हुए होता है।

दलित वर्ग की ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है :

1. आर्यजनों द्वारा ऋग्वेद की रचना के समय दस्यु नामक एक प्रमुख जनजातीय समूह ने ऋग्वेद की सत्ता को मानने से इनकार कर दिया था तथा आर्यजनों से इनका भीषण युद्ध हुआ।
2. सभ्यता से दूर बसे वर्तमान जनजातीय समूह ऋग्वैदिक काल के दस्युओं से सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह जनजातियों और अछूतों के पूर्वज दस्युजन ही थे।
3. उत्तर वैदिक काल के आरंभिक चरण में महाकाव्यों में वर्णित राक्षस और असुर जन, निषाद, गिद्धराज, यक्ष, नाग, दानव, वानर, मुण्डा, यवन, कीरत आदि ऋग्वैदिक काल के दस्यु ही थे। ये जनजातीय समूह स्थापित हो रही वैदिक सभ्यता से युद्धरत रहे। इन जनजातीय समूहों के व्यापक हिस्से ने रामायण में दर्शायी गई समाज व्यवस्था के मूल्यों को पूर्णरूपेण अस्वीकार किया तथा लगातार व्यवस्था से टकराते रहे।
4. उत्तर वैदिक काल के आखिरी चरण में यानी, बुद्ध के ठीक पूर्व धर्म सूत्रों एवं धर्मशास्त्रों में वर्णित, अन्त्य, अन्त्यज, अन्तवासिनी, चाण्डाल, अस्पृश्य, बाह्य नामक जन-जातीय समूहों का स्पष्ट और सीधा सम्बन्ध राक्षसों एवं असुरों नामक जनजातीय समूहों से है, तथा इस काल में ये जनजातीय समूह वैदिक सभ्यता से परास्त हो चुके थे।

5. ऋग्वेद की रचना 'सात नदियों के देश' में हुई। यानी, इसके रचनाकार आर्यजनों का आरम्भिक केन्द्र, पूर्वी अफगानिस्तान, आधुनिक पंजाब, आधुनिक राजस्थान, हरियाणा तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश के हिस्से थे। इस केन्द्र से आर्यजन पूरब की ओर बढ़े। गंगा-यमुना का दोआब इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना। ये पूरब की ओर बढ़ते ही रहे और अन्ततः गंगा का पूरा मैदान इनका केन्द्र हो गया। यह कोई संयोग की बात नहीं है, कि उत्तर में हिमालय पर्वत शृंखला तथा दक्षिण के पठारी हिस्से (अरावली पर्वत शृंखला, मालवा का पठार, विन्ध्यपर्वत, मैकाल रेन्ज, छोटा नागपुर का पठार) के बीच वैदिक सभ्यता का विस्तार होता है। वैदिक सभ्यता के क्षेत्र में जनजातीय आबादी लगभग विलुप्त है। पंजाब व हरियाणा में इनका प्रतिशत शून्य है। उ. प्र. में 0.21 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में 4.61 प्रतिशत, बिहार में 8.31 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 5.62 प्रतिशत है। बिहार एवं पं. बंगाल की जनजाति आबादी उड़ीसा से सटे हुए पठारी क्षेत्र में ही है। जबकि अरावली के दक्षिणी पठार पर जनजातीय आबादी पर्याप्त मात्रा में है। राजस्थान में 12.21 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 22.97 प्रतिशत, उड़ीसा में 22.43 प्रतिशत तथा इसी से सटे हुए महाराष्ट्र, गुजरात एवं आन्ध्र प्रदेश में भी जनजातीय आबादी एक खास भौगोलिक क्षेत्र में फैली है। और यह वही क्षेत्र है, जहाँ वैदिक सभ्यता बहुत बाद में फैलती है। यह क्षेत्र उपजाऊ नहीं है, कम वर्षा वाला क्षेत्र है तथा फलदार वृक्षों के मामले में समृद्ध नहीं है। जबकि गंगा का मैदान हर दृष्टिकोण से समृद्ध है। जब यह सिद्ध हो चुका है कि वैदिक सभ्यता का क्षेत्र एवं जनजातीय सभ्यता का क्षेत्र दो समानान्तर भौगोलिक क्षेत्र में है, तो यह भी सिद्ध होता है कि जैसे-जैसे वैदिक जन पश्चिम से पूरब गंगा के मैदान में बढ़ते गये, वहां की स्थानीय आबादी पर इनका आधिपत्य स्थापित होता गया तथा जो इनके आक्रमण से स्वयं को बचा पाये, वे गैर उपजाऊ पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र की शरण लेते गये। यही कारण है कि पंजाब एवं गंगा के

क्षेत्र में अछूत आबादी पर्याप्त मात्रा में है। पंजाब में 28.31 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में 25.34 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 21.05 प्रतिशत, बिहार में 14.55 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 23.62 प्रतिशत तथा यह वही अछूत आबादी है, जिनके पूर्वज ऋग्वेद में दस्यु के रूप में जाने जाते हैं तथा एक हजार वर्ष तक युद्ध करने के बाद या तो वैदिक सभ्यता द्वारा पराजित होकर व्यवस्था से जुड़ गये या बलपूर्वक इन्हें जोड़ा गया, या गंगा क्षेत्र के घने जंगलों की कटाई तथा ग्रामीण सभ्यता के विकास होने के कारण अब सुदूर जंगलों में रहना नामुमकिन हो गया था। यह भी सम्भव है कि जो जनजातीय समूह हिमालय की ओर गये, उनका हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं को पार करना मुश्किल हो गया तथा हिमालय क्षेत्र की प्राकृतिक आपदाओं ने इन्हें वैदिक जनों की सभ्यता के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया। जिस प्रकार अछूतों में उपजातीय विभाजन है, तथा जिस तरह विभिन्न उप-जातियाँ खास भौगोलिक क्षेत्रों में पाई जाती हैं, इससे यह भी सिद्ध होता है कि अलग-अलग समूहों में जन-जातीय समूह इस सभ्यता से जुड़ते रहे तथा अछूतों की श्रेणी में शामिल होते गये।

6. चूँकि बौद्ध दर्शन ब्राह्मणवादी दर्शन के विरुद्ध खड़ा हुआ था, जिसे मौर्य-साम्राज्य ने राज्य संरक्षण भी प्रदान किया तथा मौर्यकाल तक भारत में एक आत्मनिर्भर कृषि ग्रामीण सभ्यता विकसित हो चुकी थी। यह तर्कसंगत ही होगा कि बड़ी संख्या में व्यवस्था से बाहर रह रहे जनजातीय समूह, व्यवस्था से जुड़ना आरंभ कर दिये हों। फिर यह भी स्वाभाविक रहा होगा कि, व्यवस्था से जुड़ रहे जनजातीय समूह ब्राह्मणवादी दर्शन को परास्त करने वाले बौद्ध दर्शन की ओर आकर्षित हुए हों तथा बौद्ध दर्शन स्वीकार कर लिये हों। चूँकि बौद्ध दर्शन ब्राह्मणवाद से वैचारिक स्तर पर युद्ध को प्राथमिकता दी थी, तथा समाज के अन्दर इसके व्यावहारिक ढाँचे को ठोस ढंग से चुनौती नहीं दी, इसलिये व्यवस्था के नये आगंतुक स्वामित्व के अधिकार से वंचित ही रहे। इस

तरह वैचारिक स्तर पर पराजित ब्राह्मणवादी दर्शन, वास्तव में धरातल पर अपनी समाज व्यवस्था को सुरक्षित रखने में सफल रहा।

7. सन् 185 ई. पू. में मौर्यवंश के अन्तिम सम्राट् वृहद्रथ की उसी के सेनापति पुश्यमित्र शुंग द्वारा हत्या कर देने के बाद बौद्ध दर्शन, जो तेजी से एक धर्म-दर्शन के रूप में परिवर्तित हो रहा था, को राज्य संरक्षण समाप्त हो गया, तथा नये राजतन्त्र ने ब्राह्मणवाद को मात्र बढ़ावा ही नहीं दिया, बल्कि बौद्धों का व्यापक स्तर पर नरसंहार हुआ, बौद्ध विहारों को नष्ट किया गया, तथा बौद्धों की गतिविधियाँ प्रतिबन्धित कर दी गयीं। तब निश्चित रूप से, उन बौद्धों पर, जिनका सभ्यता से जुड़ाव मौर्यकाल में हुआ था, तथा जो वैदिक सभ्यता के जानी-दुश्मन थे, हमलों के शिकार हुए होंगे, और उन्हें सभी प्रकार के सामाजिक एवं नागरिक अधिकारों से वंचित किया गया होगा। सम्भवतः प्राचीन भारत के इस काल में भौतिक प्रगति, श्रमिकों की आवश्यकता भी महसूस कर रही थी और इस तरह जनजातीय उपज के बौद्धों को समाज व्यवस्था ने श्रमिकों के रूप में स्वीकार कर लिया था।

8. सन् 319 ई. में गुप्त वंश के शासन की स्थापना होती है। मौर्य-साम्राज्य के पतन (185 ई. पू.) तथा गुप्त वंश के शासन की स्थापना के बीच 300 वर्षों से अधिक के काल को संक्रमण का काल भी कह सकते हैं। क्योंकि इस काल में बुद्ध की समूची रेडिकल दार्शनिक धरोहर नष्ट होती है, विदेशी आक्रमण तेज होते हैं, तथा ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान होता है। आर्थिक क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन होते हैं तथा सामाजिक संरचना और जटिल तथा सुसंगठित हो जाती हैं अस्पृश्यता का एक संस्थागत रूप विकसित होता है, तथा ब्राह्मणवाद अपने विरुद्ध ठोस चुनौतियों को परास्त कर चुका होता है।

आठवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मध्य युग का आरंभ होता है। मध्य-युग अपने आरंभ में ही शंकराचार्य को जन्म देता है। जो प्राचीन युग के आखिरी चरण के गर्भ में पहले ही पल रहे थे।

जहाँ प्राचीन युग में वैदिक जन मात्र अपने लिये साहित्य की रचना करते थे, वहीं मध्ययुग के आरंभ में शंकर ने उनके लिये भी साहित्य की रचना की जो वैदिक दर्शन एवं सभ्यता को आरंभ से ही नकारते रहे। शंकर के दर्शन की यही मूल विशेषता रही। शंकर ने अपने दर्शन के लबादे में व्यवस्था विरोधियों को ढँक लिया और इस तरह लम्बे काल तक के लिये व्यवस्था विरोधी सम्भावनाओं को कुचल डाला। इसीलिये शंकराचार्य के तीन सूत्र, 'ब्रह्म सत्यम, जगत मिथ्या, अहम् ब्रह्मास्मि तथा सर्व खलु इदम् ब्रह्मम्' ब्राह्मणवादी दर्शन के विकास में मील के पत्थर बन जाते हैं।

दलित दर्शन, ब्राह्मणवादी व्यवस्था और राज्य

ब्राह्मणवाद की सैद्धान्तिक स्थापना से लेकर (1500 ई. पू. से 1000 ई. पू.) आज तक (20वीं सदी) लगभग 3500 वर्षों का सफर हो चुका है। लगभग इन साढ़े तीन हजार वर्षों में, आरम्भ के लगभग 1000 वर्षों तक दलितों के पूर्वज व्यवस्था से टकराते रहे, पर जब व्यवस्था संस्थागत रूप से स्थापित हो जाती है तो आखिरी दिनों में (बुद्ध के ठीक पूर्व) व्यवस्था विरोधी जनजातीय समूह स्वयं अपनी सभ्यता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। लगभग डेढ़ हजार वर्षों (बुद्ध से शंकर तक) के काल के आरंभिक लगभग 500 वर्षों तक दलित वर्ग वैदिक सभ्यता से जुड़ता है, तथा बौद्ध दर्शन को अपना दर्शन स्वीकार करता है। मौर्य साम्राज्य के पतन (185 ई. पू.) के बाद लगभग 1000 वर्षों (200-ई. पू. ई. सन् 800 तक) ब्राह्मणवादी व्यवस्था दलित वर्ग को नाथने एवं पूर्ण रूप से अपने वश में करने का कार्य करती है। दुनिया के इतिहास में शायद यह मात्र एक मिसाल होगी, जहाँ एक वर्ग को पूरी तरह अपने वश में करने के लिये किसी व्यवस्था को लगभग 1000 वर्षों तक प्रयासरत रहना पड़ा हो।

व्यवस्था द्वारा पूरी तरह नाथ दिये जाने के बाद लगभग 1000 वर्षों से भी अधिक समय तक, शंकर से अम्बेडकर तक, दलित वर्ग को जलालत की वह जिन्दगी मिलती है, जिसकी शायद दुनिया में कोई मिसाल नहीं होगी। यह एक चिन्तन का विषय है कि जिस वर्ग को नाथने में हजार वर्ष लग गये हों, वही वर्ग भक्तिकाल के फुफकार के अलावा हजार वर्षों तक बंधनों को तोड़ क्यों नहीं पाया? क्या व्यवस्था का भार इतना अधिक

था, या मुक्ति का कोई दर्शन इनके पास नहीं था, या दोनों? लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों के इतिहास में अम्बेडकर के रूप में भारतीय मानव को मुक्ति का दर्शन पहली बार प्राप्त हुआ। व्यवस्था विरोधी क्रान्तिकारी अम्बेडकरवाद को दलित वर्ग एवं समाज यदि समय रहते आत्मसात् नहीं करता है, तो व्यवस्था के निर्माता, शीघ्र ही इसे व्यवस्थापरक सुधारवादी दर्शन के रूप में तब्दील कर देंगे। सामाजिक न्याय के लबादे में व्यवस्था-परस्त विचारक एवं इनके नेता इस कार्य में लग गये हैं।

लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष के भारतीय इतिहास में राज्य जैसी संस्था का इतिहास लगभग 2500 वर्षों (बुद्धकाल से अब तक) का है। इन 2500 वर्षों में ब्राह्मणवाद को लगभग 1400 वर्षों तक राज्य संरक्षण प्राप्त रहा, यानी कि, शुंगवंश की स्थापना (ई. पू. 185) से लेकर दिल्ली की सल्तनत की स्थापना (सन् 1206 ई.) तक। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही भारत में मुस्लिम शासन स्थापित होता है, और फिर प्लासी के युद्ध (1771) के बाद ब्रिटिश शासन। लगभग 800 वर्षों तक ब्राह्मणवाद को राज्य संरक्षण नहीं मिला। तब वे कौन-से कारण हैं, कि न तो ब्राह्मणवाद नष्ट हुआ, और न ही, ब्राह्मणवादी व्यवस्था का नाश! तब क्या यह सच नहीं है कि ब्राह्मणवाद का प्राण राज्य के सिर में नहीं बल्कि उसकी नाभि में है। अतः मुख्य निशाना नाभि पर होना चाहिए, तभी सिर पर कोई हमला सार्थक होगा। यानी कि, ब्राह्मणवाद को रेडिकल सामाजिक आन्दोलनों द्वारा पहले अन्दर से तोड़ना होगा, तब जाकर राजनीतिक हमला सफल हो सकता है। अपनी इसी ऐतिहासिकता के चलते, दलित वर्ग वर्तमान व्यवस्था को तोड़ने की स्वाभाविक क्षमता रखता है, तथा व्यवस्था विरोधी किसी भी अभियान का स्वाभाविक अगुआ भी होगा। अम्बेडकरवाद के रूप में समाज को तथा दलित वर्ग को ऐसी विचारधारा मिली है, जिसके अनुसार चलकर एक नयी समाज व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

दलित वर्ग का भारतीय सभ्यता पर कर्ज

मानव श्रम, प्राकृतिक सम्पदा एवं जलवायु के दृष्टिकोण से समृद्ध भारत भूखण्ड पर दुनिया के सर्वाधिक निरक्षर, अपंग, भूखे और बीमार लोग रहते हैं। कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था होते हुए भी भारत देश खाद्यान्न

के मामले में पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं है। औद्योगिक विकास के मामले में देश की दरिद्रता जगजाहिर है। भिखारियों की जनसंख्या के मामले में दुनिया में प्रथम स्थान रखने वाला भारत देश स्वयं भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में एक महान् भिखारी के रूप में जाना जाता है। विज्ञान, तकनीक और साहित्य के विकास के लिये सर्वथा प्रतिकूल भारतीय सभ्यता दुनिया को बौद्ध दर्शन के अलावा और कुछ नहीं दे पायी इसे विडम्बना कहें, या भारतीय सभ्यता की मनोवृत्ति, अपनी मात्र एक दार्शनिक उपलब्धि 'बुद्धिज्म', को स्वयं इसी सभ्यता ने ठुकरा दिया।

भारत की इस दीन-हीन दशा को समझने के लिये आवश्यक हो जाता है कि भारतीय व्यक्तित्व की मूल बातों को समझना। तभी जाकर दलित वर्ग के योगदान को भी समझा जा सकता है।

30-40 हजार वर्ष पूर्व जब 'प्रबुद्ध मानव' (Homo Sapien) अस्तित्व में आया तो सभ्यता का कोई अस्तित्व नहीं था। मानव ने अपने बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम से सभ्यता का निर्माण किया। प्रकृति में संसाधन मौजूद थे। कुछ सभ्यताओं का भौगोलिक क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध था, तो कुछ सभ्यताओं का कम। भारतीय सभ्यता का भौगोलिक क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों में 'सम्वृद्धि' की श्रेणी में आता है। चूंकि प्राकृतिक संसाधनों से ही मानव ने अपने उपभोग की वस्तुएँ बनायीं, तर्कसंगत तो यही होता कि भारतीय सभ्यता भौतिक समृद्धि की दृष्टि से दुनिया में अपना एक ऊँचा स्थान रखती। पर वे मूल तर्क जो सार्वभौमिक सच है, भारतीय सभ्यता में पराजित हो जाते हैं, क्यों?

मानव मूलतः तीन प्रकार का संघर्ष करता है : प्रथम, मानव का स्वयं से संघर्ष, द्वितीय, मानव का मानव से संघर्ष। और तृतीय, मानव का प्रकृति से संघर्ष। मानव का स्वयं से संघर्ष अपने-आपको तेजस्वी एवं प्रखर बनाने के लिये होता है। मानव का मानव से संघर्ष वर्ण, हित, वर्ग हित तथा सर्वजन हित के लिये, तथा मानव प्रकृति से संघर्ष करता है, प्रकृति को अपने उपभोग हेतु परिवर्तित करने के लिये। मानव चरित्र की ये मूल बातें सार्वभौतिक सच है। पर, मानव चरित्र की ये मूल बातें भारतीय सभ्यता में पराजित हो जाती हैं, क्यों?

मानव अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठ और भिन्न है। इस भिन्नता और श्रेष्ठता के अनेक कारण हैं। मानव मस्तिष्क का आकार बड़ा होना तथा

मस्तिष्क में विचार जन्म देने की क्षमता का होना, मानव को अन्य जीवों से श्रेष्ठ और भिन्न बना देता है। यही कारण है कि मात्र मानव ही ऐसा जीव है जो औजार का उपयोग करता है। मानव का यह गुण उसकी शक्ति को गुणात्मक रूप से महान् बना देता है। मानव शक्ति उसके बौद्धिक श्रम एवं शारीरिक श्रम में निहित होती हैं अपने इसी गुण के कारण मानव प्रकृति का भी स्वामी बन जाता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि वर्तमान भारतीय सभ्यता के निर्माता वैदिक जन थे, जिनका दर्शन ब्राह्मणवाद था जिसे हम हिन्दू दर्शन या भारतीय दर्शन के रूप में भी जानते हैं। अतः भारतीय सभ्यता को हिन्दू सभ्यता के रूप में भी जाना जाता है। यद्यपि आरंभिक चरण को वैदिक सभ्यता या आर्य सभ्यता के रूप में भी जाना जाता है। भारतीय सभ्यता की आधारशिला जिस चिन्तन पद्धति के आधार पर खड़ी हुई तथा जो सिद्धान्त तथा दर्शन इस सभ्यता ने आरम्भ में ही स्थापित कर दिये, उनके परीक्षण के बगैर हम वर्तमान को ठीक से समझ नहीं सकते।

चूँकि मानव अपने विशिष्ट मस्तिष्क के कारण जीवों में श्रेष्ठ जीव है, तथा अपनी श्रम शक्ति से प्रकृति पर स्वामित्व स्थापित कर लिया, पर समृद्धिशाली भौतिक सभ्यता का निर्माण नहीं कर सका। इसलिये भारतीय मानव के बौद्धिक प्रणाली को समझना आवश्यक हो जाता है।

मानव का प्रकृति से संघर्ष तथा प्रकृति पर उसकी विजय यात्रा में मानव की बौद्धिक शक्ति निर्णायक रही है। शारीरिक शक्ति में मानव तमाम जीवों से कमजोर है, परन्तु अपनी बौद्धिक शक्ति के बल पर ही मानव अपने से बलवान जीवों को सर्कस में नचाता है। यह ध्यान रहे, बौद्धिक शक्ति का विकास भी निरन्तर चिंतन एवं उसके अनुसार प्रयोग एवं उपयोग पर निर्भर करता है। जब बात चिन्तन की आती है, तो उसमें चिन्तन पद्धति महत्त्वपूर्ण हो जाती है। क्योंकि यदि चिन्तन पद्धति वैज्ञानिक नहीं है, तो वह व्यक्ति को कुंठित कर देती है। कुण्ठाग्रस्त चिन्तन मानव को समझने में भी गलती करता है, तथा प्रकृति, जिससे वह अपने उपभोग की वस्तुएँ तैयार करता है, को भी समझने में स्वभावतः गलती करता है। जब अवैज्ञानिक चिन्तन पद्धति पूरे समाज की चिन्तन पद्धति बन जाती है, तो पूरा समाज जड़ हो जाता है, तथा है।

वैदिक दर्शन ने मानव और पदार्थ को समझने में अति भौतिक चिन्तन (Metaphysical) पद्धति का उपयोग किया, और इस तरह पदार्थ और प्रकृति को समझने में गलती की। इसीलिये, वैदिक दर्शन जो हिन्दू दर्शन की आधारशिला है, ने प्राकृतिक संसाधनों से एक समृद्धिशाली एवं ऊर्जावान सभ्यता का निर्माण नहीं कर सका। वैदिक चिन्तन पद्धति किस हद तक अवैज्ञानिक थी मात्र कुछ बिन्दुओं को उद्धृत कर समझा जा सकता है।

1. वैदिक चिन्तन पद्धति पदार्थ की प्रकृति को उसके अंतः गुणों से नहीं, बल्कि केवल बाह्य गुणों से पहचानती है, और उसी तरह उसका मूल्यांकन भी करती है। इसीलिये वैदिक जन, किसी वस्तु विशेष को उसके केवल एक रूप को देख पाते हैं। इस पद्धति के चलते वे कल्पना नहीं कर पाते कि कैसे पानी वाष्प भी बन सकता है, तथा पानी बर्फ का रूप भी धारण कर सकता है। इसीलिये वैदिक सभ्यता में धातु का उपयोग बहुत बाद में होता है। क्योंकि वे पदार्थ की परिवर्तनशीलता को असम्भव मानते हैं, उनके लिये पदार्थ का रूप एक ही हो सकता है। ठोस, द्रव या गैस, एक ही पदार्थ तीनों रूप में हो सकता है, यह वैदिक जन की कल्पना के बाहर की बात थी।

गेहूं से गेहूं पैदा होगा, सरसों से सरसों, घोड़े से घोड़ा पैदा होगा तथा मानव से मानव। यह सब पदार्थ या जीव के मूलतः आन्तरिक गुणों पर निर्भर करता है। अपनी अवैज्ञानिक चिंतन पद्धति के चलते ही पुरुष सूक्त की रचना होती है, जिससे एक ही शरीर से मानव वर्ग, वायु, घोड़ा आदि सब पैदा होते हैं। पदार्थ या जीन के अन्तः गुणों की प्रकृति के अनुसार ही बाह्य कारण उसे प्रभावित करते हैं।

चूँकि वैदिक जन पदार्थ के अस्तित्व में उसके आन्तरिक गुणों को मूल कारण नहीं मानते, इसीलिये वे प्रकृति को भी वैज्ञानिक ढँग से समझना उनके लिये मुमकिन नहीं था। तब प्राकृतिक संसाधनों को व्यापक पैमाने पर मानव उपभोग के रूप में परिवर्तित कर देने का प्रश्न ही कहाँ उठता।

2. वैदिक चिन्तन पद्धति में तर्क को कोई स्थान नहीं होता है। वे रहस्य को रहस्य रहने देते थे तथा रहस्यों का कारण किसी रहस्यमयी परालौकिक शक्ति को मानते हैं। इसलिये बाढ़ आ गयी तो वे इसे ईश्वर

का प्रकोप मानेंगे। चूँकि ऐसा उनका विश्वास है, अतः सूखे का मुकाबला करने के लिए बाँधों का निर्माण नहीं किया। बाढ़ से बचने का उपाय भी नहीं किया। वे बरसात के देवता को प्रसन्न करने के लिये बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, तथा अन्न उत्पादन को ईश्वर की महिमा मानते रहे। चिन्तन की इन विकलाँगताओं के चलते वैदिक जन कृषि के विकास में भी कोई क्रान्तिकारी भूमिका निभाने में सर्वथा अक्षम रहे।

3. वैदिक चिन्तन में 'प्रयोग द्वारा सत्यापन' का कोई स्थान नहीं है। इसीलिये उन्होंने अपने सिद्धान्तों को प्रयोग की कसौटी पर कसने का प्रयास कभी नहीं किया। वे आग लग जाने पर उसे बुझाने के लिये अग्नि देवी की स्तुति करेंगे, तथा आग पैदा करने के लिये भी स्तुति का सहारा लेंगे। इसीलिये निकट की चीनी सभ्यता में जब मानव प्राकृतिक गैस को इस्तेमाल करने में सक्षम हो गया था, तब भारत में वैदिक जन ऊर्जा के लिये यज्ञ कर रहे थे।

4. वैदिक चिन्तन में अनुभव से सीखने का निषेध होता है, क्योंकि यदि अनुभव द्वारा सीखने का महत्त्व होता तो उनके पूर्वजों द्वारा स्थापित सिद्धान्त सभी के कपोत-कल्पित सिद्ध हो चुके होते। यही वह कारण है कि जब अमेरिका चाँद पर अपना झंडा लहराता है, तो भारतीय स्कूलों में चंदा मामा के गीत गाये जा रहे होते हैं।

5. वैदिक चिन्तन में लौकिक शक्तियों की भूमिका अनुपस्थित रहती है, और अलौकिक शक्ति, जिसे अनुपस्थित रहना चाहिए, उसे ही अस्तित्व का कारण और स्रोत दोनों मान लिया जाता है। इस पद्धति के चलते धरती वायुमण्डल से अलग हो जाती है। सागर धरती से अलग हो जाता है। एक दूसरे से तीनों अलग हो जाते हैं। इस तरह सागर, धरती, वायु-मण्डल और अन्तरिक्ष में कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। सबकी एक दूसरे से अलग स्वतंत्र सत्ता होती है और यह एक-दूसरे को प्रभावित नहीं करते। इस चिन्तन-पद्धति के चलते ही हिन्दू-दर्शन न तो पृथ्वी को समझ पाया, न तो सागर को और न ही वायु मण्डल एवं अन्तरिक्ष को ही। फिर तारों, ग्रहों और उपग्रहों को समझ लेने का प्रश्न ही कहाँ उठता?

उपर्युक्त पाँच बिन्दुओं का किसी भी वैज्ञानिक जिज्ञासा हेतु भौतिक परिस्थिति उत्पन्न करने में निर्णायक भूमिका होती है वैदिक चिन्तन पद्धति

में इन पांचों बिन्दुओं की दुःखद अनुपस्थिति पूरी वैदिक सभ्यता को वैज्ञानिक पद्धति के विरुद्ध खड़ा कर देती है।

चूँकि विज्ञान प्रकृति के रहस्यों, घटनाओं इनकी गति और अस्तित्व की व्यख्या मात्र करता है, और इस तरह 'कैसे' (How) का उत्तर देता है, न कि 'क्यों' (Why) का। इसीलिए विज्ञान सत्य को निरपेक्ष नहीं मानता। वैज्ञानिक पद्धति में सत्य सदैव सापेक्ष होता है। परन्तु हिन्दू चिन्तन पद्धति में 'सत्य' सदैव निरपेक्ष होता है, तथा हिन्दू दर्शन 'क्यों' का उत्तर देता है, 'कैसे' का नहीं। महाभारत में एकलव्य का अंगूठा काट लिया जाता है, 'क्योंकि' एकलव्य को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं था। यह अधिकार 'कैसे' नहीं था, इसका उत्तर नहीं मिलता है। इसी तरह रामायण में शम्बूक ऋषि का सिर काट लिया जाता है, 'क्योंकि' उन्हें तपस्या का अधिकार नहीं था। 'कैसे' तपस्या का अधिकार नहीं था, इसका उत्तर नहीं मिलता है।

हिन्दू चिन्तन पद्धति में वैज्ञानिक पद्धति की अनुपस्थिति के कारण हिन्दू सभ्यता में जन्मा तथा इसके मूल्यों को लेकर विकसित हुआ व्यक्तित्व मूलतः कुंठित, गतिहीन एवं असृजनकारी होता है।

भारत ने छः महान् वैज्ञानिक पैदा किये हैं—सी.वी. रमन और इन्हीं के भतीजे एस. चन्द्रशेखर, हरगोविन्द खुराना, (इन तीनों को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है) होमी जहाँगीर भाभा, एस. एन. बोस और जे. सी. बोस। यह तो जग जाहिर है कि इन सारे वैज्ञानिकों ने पश्चिमी सभ्यता द्वारा विकसित विज्ञान की पुस्तकों को पढ़कर ही अपना कार्य किया है। इनमें भी दो नोबेल पुरस्कार विजेता श्री खुराना और श्री चन्द्रशेखर अमेरिका की नागरिकता ले चुके हैं। श्री खुराना अभी जीवित हैं और श्री चन्द्रशेखर का अभी हाल ही में देहान्त हो चुका है। भारत में जो भी विज्ञान पढ़ाया जाता है, उसकी पद्धति एवं साहित्य पश्चिमी सभ्यता का ही है। यह कहना बेमानी होगा कि भारत में सुविधाएँ नहीं हैं, इसलिए यहां विज्ञान पीछे है। पहली बात तो यह है कि कैसे पश्चिमी सभ्यता ने विज्ञान की प्रगति हेतु सुविधाएँ उत्पन्न कर लीं और भारतीय सभ्यता ये सुविधाएँ उत्पन्न करने में असफल रहीं? आज जब सुविधाएँ हैं तो भी भारतीय वैज्ञानिक अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर फिसड्डी ही हैं। सच तो यह है कि वैदिक

चिन्तन पद्धति की धरोहर के चलते आधुनिक भारतीय चिन्तन पद्धति वैज्ञानिक जिज्ञासा के लिए सर्वथा प्रतिकूल है। ठीक वैसे ही, जैसे वैदिक चिन्तन पद्धति पर आधारित आधुनिक समाज व्यवस्था भी प्रगतिशील विचारों की उत्पत्ति के लिए प्रतिकूल है।

दलित वर्ग का भारतीय सभ्यता पर सबसे बड़ा कर्ज यही है कि दलित वर्ग ही एक ऐसी संघर्षशील सामाजिक श्रेणी रही है, जिसने आरम्भ से ही विज्ञान, लोकतंत्र एवं न्याय विरोधी ब्राह्मणवादी दर्शन का प्रचण्ड विरोध करते हुए, वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति एवं प्रगतिशील विचारों के अस्तित्व की उम्मीद की किरण जगाये रखी। दलितों ने आरंभ से ही 'कैसे' का उत्तर माँगा है। यदि दलित समाज ब्राह्मणवाद को पराजित करने में सफल हो गया होता, तो सम्भवतः करोड़ों की आबादी वाली इस भूमि पर विज्ञान के वृक्ष बहुत पहले उग चुके होते और भारत आज विश्व की अग्रणी सभ्यताओं में होता। आज भी जब भारतीय सभ्यता विकास के दौर में पीछे छूट गई है, दलित वर्ग ही ब्राह्मणवाद के विरुद्ध मोर्चा सम्भाले हुए है। ब्राह्मणवाद की पराजय भारत को अभी भी नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकती है। पर यह तभी सम्भव है, जब ऊर्जावान दलित वर्ग भारतीय समाज एवं राज्य-व्यवस्था को नेतृत्व देगा।

पुस्तकों की विस्तृत जानकारी हेतु लिखें या वेबसाइट देखें

Website : www.gautambookcentre.com
Email : gautambookcentre@gmail.com

गौतम बुक सेन्टर
प्रकाशक एवं वितरक
C-263 A, "चन्दन सदन"
हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093
Ph. : 22810380, 9810173667

ISBN 81-87733-53-5